नईदुनिया

संपादकीय

भारत में गरीबी में कमी

विश्व बैंक की हालिया रिपोर्ट भारत में अत्यधिक गरीबी में आई उल्लेखनीय कमी को दर्शाती है। आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2022-23 में यह दर 5.3 प्रतिशत रह गई है, जो वर्ष 2011-12 में 27.1 फीसदी थी। रिपोर्ट के निष्कर्षों के अनुसार भारत ने लगभग एक दशक से कुछ कम समय में 27 करोड़ लोगों को अत्यधिक गरीबी से बाहर निकाला है, जो पैमाने और गति के मामले में उल्लेखनीय उपलब्धि कही जा सकती है। निश्चित रूप से इस उपलब्धि में विभिन्न कल्याण कार्यक्रमों मसलन आर्थिक विकास और ग्रामीण रोजगार योजनाओं की बड़ी भूमिका रही है। नि:संदेह, इसने सबसे गरीब तबके के लोगों की आय बढ़ाने में मदद की है। निश्चित रूप से सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार, प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण, बिजली, शौचालयों और आवास तक इस तबके की पहुंच बढ़ाने जैसी पहल ने ग्रामीण और अर्ध-शहरी भारत में जीवन की गुणवत्ता बेहतर बनाने में योगदान दिया है, लेकिन जहां हम गरीबी उन्मूलन में मिली सफलता पर आत्ममुग्ध हैं तो वहीं समाज में बढ़ती आर्थिक असमानता हमारी चिंता का विषय होना चाहिए। पिछले साल जारी की गई विश्व असमानता रिपोर्ट 2022 से पता चलता है कि भारत में शीर्ष एक प्रतिशत लोगों की संपत्ति में बड़ा उछाल आया है। वे लोग देश की चालीस फीसदी संपत्ति नियंत्रित करते हैं।

इसमें दो राय नहीं कि वैश्वीकरण और उदारीकरण की नीतियों से देश में आर्थिक असमानता को बढ़ावा मिला है। वहीं तकनीकी प्रेरित सेवाओं में उछाल के चलते, वर्ष 2000 के बाद विकास मॉडल ने एक छोटे वर्ग को असंगत रूप से लाभान्वित किया है। निश्चित रूप से नई आर्थिक नीतियों की विसंगतियों से उपजे असमान परिदृश्य में लाखों लोग गरीबी की रेखा से ऊपर तो उठ गए,लेकिन वे बीमारी, नौकरी छूटने या जलवायु परिवर्तन से उपजी आपदाओं जैसे संकटों के प्रति संवेदनशील बने हुए हैं। आर्थिक असुरक्षा और सामाजिक रूप से हाशिये पर रहने वाली आबादी के बड़े हिस्से के लिये यह खतरा बना हुआ है। एक मजबूत सुरक्षा कवच का अभाव इस संकट की संवेदनशीलता को बढ़ा देता है। भारत के विकास की गाथा तभी लिखी जा सकती है, जब हम इस असमानता की खाई को पाटकर गरीबी को कम करने की दिशा में आगे बढ़ें। निर्विवाद रूप से सामाजिक न्याय के लिये गरीबी कम करने के साथ, कमजोर तबकों के लिये सम्मान,समानता और नीतियों में लचीलापन जरूरी है। वास्तव में गरीबी मुक्त भारत का लक्ष्य तभी पूरा हो सकता है जब सरकार की कल्याणकारी नीतियां न केवल उन्हें गरीबी के दलदल से बाहर निकालें, बल्कि उन्हें स्वावलंबी भी बनाएं। आर्थिक कल्याणकारी नीतियों का मकसद मुफ्त की रेवड़ियां बांटना न होकर उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करना होना चाहिए। निर्धन आबादी के लिये जनकल्याण की योजनाएं जरूर चलायी जानी चाहिए, लेकिन एक वक्त के बाद सरकारी सहायता पर उनकी निर्भरता को कम करना भी उतना ही जरूरी है। वहीं दूसरी ओर, शिक्षा के प्रसार से इस वर्ग की उत्पादकता बढ़ाने की भी कोशिश की जानी चाहिए। तभी गरीबी का कुचक्र स्थायी रूप से कम किया जा सकता है।

नशे के खिलाफ मुहिम तेज करने की जरूरत

गुरबचन जगत

लगता है नशे और अवैध रूप से बनाई गई शराब के खिलाफ़ पंजाब सरकार ने जंग करने का मन बना लिया है। अवैध शराब का इतिहास शायद उतना ही पुराना है जितना कि मानव जाति का क्रमिक विकास। कर्मस्थली के रूप में मेरी पहली पोस्टिंग बतौर एसपी कपूरथला हुई थी। जो उस समय सिर्फ़ छह पुलिस थानों वाला एक छोटा सा जिला था। उस वक्त की कानून-व्यवस्था की समस्याओं में से एक थी नदी के किनारे अवैध शराब उत्पादन। घनी झाड़ियों वाले इलाके में छिपी शराब भट्टियां धड़ल्ले से चलती थीं। खुफिया सूचनाओं के आधार पर, हमने पूरे इलाके में व्यापक संयुक्त छापे मारे, बड़ी संख्या में शराब बनाने वालों को गिरफ़्तार किया और बड़ी मात्रा में 'लाहन' और शराब बनाने वाले कुंड जब्त किए।

आज पचास साल बाद भी, जारी इस लड़ाई के बारे में पढ़ता रहता हूं, हालांकि अब ज़्यादा मैनपॉवर और तकनीक उपलब्ध है। अफीम और भुक्की, जुआ, वेश्यावृत्ति, आदि के खिलाफ भी ऐसे ही अभियान चलाए गए थे। हालांकि, उस समय समस्या का पैमाना आज की तुलना में नाममात्र था। नशीले पदार्थ, विशेषतया रासायनिक किस्म के, इनकी आमद भी नशे की दुनिया में हो गई है और राज्य के साथ-साथ देश भर के सीमावर्ती क्षेत्रों (विशेष रूप से पश्चिमी तट पर, जहां पर भारी मात्रा में जब्तियां की गई हैं) में बड़े-बड़े गिरोह सक्रिय हैं, लेकिन इन नशीले पदार्थों के वास्तविक स्रोत और ठिकाने के बारे में कोई विवरण उपलब्ध नहीं। फिर, मैं एक के बाद एक आई सरकारों के सामाजिक बुराइयों से निबटने के रवैये से भी हैरान हूं। कोई भी देश मानवीय बुराइयों को खत्म नहीं कर पाया है, क्योंकि वे सभ्यता जितनी पुरानी हैं; हालांकि, उन्होंने बेहतर संतुलन बनाने के लिए प्रयास किए।

अमेरिका ने एक सदी पहले शराबबंदी का प्रयोग किया था, लेकिन हश्र अपराध सरगनाओं और अनियंत्रित माफिया के रूप में मिला। अंततः अधिकांश देशों ने अपने-अपने समाज के हिसाब से खोजे विशिष्ट समाधानों के माध्यम से समाज के अपराधीकरण और अनियंत्रित नशा कारोबार को कम-से-कम रखने की कोशिश की है। कुछ ने कम एल्कोहल वाले पेय पदार्थों को बढ़ावा दिया, तो कईयों ने भांग और इसी तरह के हल्के नशीले पदार्थों को वैध बना दिया। हालांकि वे हार्ड ड्रग्स और उनकी बच्चों को आपूर्ति के मामले में काफी सख्त हैं। शराब और ड्रग्स के शरीर एवं दिमाग पर पड़ने वाले असर को समझाने के लिए लगातार जागरूकता अभियान चलाए जाते हैं।

फिर से अपने गृह राज्य पंजाब की बात करूं तो, 1980 और 1990 के कठिनाई भरे दशकों में पैदा हुई मुसीबतों ने सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने को बुरी तरह प्रभावित किया था। आतंकवाद और पाकिस्तान द्वारा छेड़े गए छद्म युद्ध ने राज्य में कहर बरपाया। आईएसआई ने हथियार, गोला-बारूद और प्रशिक्षण की आपूर्ति की। अफगानिस्तान में सोवियत संघ के खिलाफ मुजाहिदीनों द्वारा जिस रणनीति में निपुणता पाई थी, उसका इस्तेमाल यहां भी किया गया, साथ ही गोला-बारूद का भी। एके-47 एक खतरनाक हथियार बन गया (अधिकांश पर अफगान मार्का हुआ करता था) और इससे आतंकवादियों की मारक शक्ति बढ़ी। उद्योग-धंधे चौपट हो गए या पलायन कर गए; हत्याओं से परिवार टूट गए; जबरन वसूली एक स्थाई खौफ बन गई। हजारों लोग मारे गए- नागरिकों के अलावा पुलिस और अर्धसैनिक बलों के जवान भी। इतने बड़े पैमाने पर पड़े शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक आघातों को दूर करने के लिए कोई बड़ा प्रयास नहीं किया गया।

जीवन के तमाम मापदंडों पर एक पूरा सूबा लगभग तबाह हो गया और इस उथल-पुथल के कारणों और प्रभावों की जांच करने और उपाय सुझाने के लिए एक भी आयोग का गठन नहीं किया गया। लोगों को इससे खुद ही निबटने के लिए छोड़ दिया गया- काफी लोग पलायन कर गए, कुछ ने अपराध करना शुरू कर दिया और गिरोह बना लिए, कईयों ने तस्करी और नशा वितरण शुरू कर दिया।

राजनेता एक अंतराल के बाद सत्ता में लौटे, पर इससे समाज का और ज्यादा अपराधीकरण ही हुआ क्यों? होना तो यह चाहिए था कि इस उद्देश्य के लिए प्रख्यात न्यायविदों, समाजशास्त्रियों और प्रशासकों की अध्यक्षता में एक जांच पैनल गठित किया जाता। राज्य, इसके संस्थानों, इसके लोगों को हुए नुकसानों की जांच करने और एक उचित पुनर्वास योजना बनाने के साथ-साथ वित्तीय और रोजगार पैकेज के वास्ते एक अलग आयोग का गठन किया जाना चाहिए था।

पंजाब में दो दशकों तक जो कुछ हुआ, वह पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित एक अघोषित युद्ध था। क्या उसे ऐसा मानकर ही बर्ताव किया गया? आतंकवाद को कुचलने की मुहिम के केवल पहले हिस्से के लिए ही पूरी सहायता प्रदान की गई। इसके बाद के परिणामों से निपटने वाले द्वितीय भाग में, पंजाब को कुदरत के रहम पर छोड़ दिया गया। मैं बताना चाहूंगा कि यह पंजाब पुलिस ही थी, जो पंजाब के नागरिक समाज के साथ मिलकर इस लड़ाई की अगुआई कर रही थी और जिसने इसका खमियाजा भुगता।

किसी क्षेत्र के आर्थिक रूप से समृद्ध होने के लिए सबसे जरूरी है व्यापार करने की क्षमता। पंजाब चारों ओर से जमीन से घिरा भूभाग है। ऐतिहासिक रूप से, यह क्षेत्र सिल्क रोड के जरिए मध्य एशिया, अफगानिस्तान और उससे आगे तक व्यापार करता था, जिसमें खैबर दर्रा एक प्रमुख संपर्क मार्ग था। अंग्रेजों के आने और उसके बाद के विभाजन के असर से हमारे लिए इस मार्ग का फायदा बंद हो गया। आज भी, यह विकल्प उपलब्ध नहीं है। वास्तव में, इसे खोलने के कुछ कमजोर प्रयासों के बावजूद कई दशकों से यह बंद है। माल ढुलाई समानीकरण योजना को वापस लिए जाने के साथ, दक्षिणी और पश्चिमी भारत के बंदरगाह अब अधिकांश उत्पादों के लिए व्यवहार्य नहीं रहे। नतीजतन, मंडी गोबिंदगढ़, खन्ना, लुधियाना आदि के कारखाने अपने पुराने वैभव की एक धुंधली झलकभर हैं। हमारे पास कोई उल्लेखनीय हवाई संपर्क नहीं है, भले ही यह राज्य सबसे ज्यादा प्रवासी भारतीय वाले प्रांतों में एक है। तो, हम कहां और कैसे व्यापार करेंज इसको यकीनी बनाने में राज्य और केंद्र सरकार की भूमिका कहां है?

अवैध शराब और नशे के खिलाफ युद्ध के मुद्दे पर वापस आते हुए, इस समस्या को मुख्य रूप से कानून-व्यवस्था की समस्या मानकर लड़ा जा रहा है और इससे निबटने के लिए नियुक्त एजेंसी पुलिस है। जहां तक मुझे पता है, समस्या की जड़ में जाने के लिए राज्य स्तर पर कोई सूचीबद्ध अध्ययन नहीं करवाया गया ङ्क सामाजिक एवं आर्थिक ताकतों और मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों से जुड़े कारकों पर। साथ ही राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक गिरोहों की भूमिका, विभिन्न राज्य एजेंसियों की भूमिका और हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली की समझौताकारी प्रकृति पर भी। इसके लिए हमें शीर्ष स्तर के समाजशास्त्रियों, मनोचिकित्सकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और मादक पदार्थों से निबटने वाली एजेंसियों को शामिल करना चाहिए। हमें इस व्यापार के स्रोत, देशभर में इसके फैले जाल और राजनेताओं, पुलिस और ड्रग आपूर्ति गिरोहों के बीच सांठगांठ का पता लगाने के लिए अपनी आंतरिक और बाहरी, दोनों, खुफिया एजेंसियों की विशिष्ट इकाइयों को भी साथ लेना चाहिये। यह एक व्यापक पहलू वाला सुझाव है, लेकिन यदि सरकार की मंशा हो, तो समस्या का अध्ययन करने तथा समाधान सुझाने के वास्ते एक कार्यात्मक छोटे समूह या समूहों का गठन किया जा सकता है।

विश्व में 16 करोड़ बाल श्रमिक, प्रत्येक दस बच्चों में से एक बाल मजदूर

विनोद कुमार विक्की

बाल श्रम निषेध दिवस 12 जून पर विशेष

प्रगति स्पष्ट है, लेकिन अभी और काम करना बाकी है,आइए प्रयासों में तेज़ी लाएँ! 12 जून 2025 (विश्व बाल श्रम निषेध दिवस) का उपरोक्त थीम इस बात का साफ संकेत दे रहा है, कि वैश्विक स्तर पर बाल श्रम उन्मूलन की चुनौती के लिए अभी हमें लंबी लड़ाई लड़नी है। हालांकि सतत विकास लक्ष्य 8.7 को अपनाने के साथ पूर्व में संयुक्त राष्ट्र ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 2025 तक बाल मजदूरी के सभी रूपों को समाप्त करने की प्रतिबद्धता जताई है, किंतु यह संघर्ष जारी है। यदि आँकड़ो पर गौर करें, तो दुनिया भर में दस में से लगभग एक बच्चा बाल मजदूरी में संलिप्त है। संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक, वर्तमान में 16 करोड़ बच्चे बाल मजदूरी में लगे हुए हैं। इस में 7.2 करोड़ की संख्या सिर्फ अफ्रीका की है, जो वैश्विक बाल श्रम में सर्वोच्च है। वहीं, एशिया और प्रशांत क्षेत्र में 6.2 करोड़ बच्चे बाल श्रम में संलिप्त हैं।

बाल श्रम, एक ऐसा अभिशाप है, जो बच्चों का ना केवल बचपन, मौलिक अधिकार और आत्म सम्मान का हनन करता है, बल्कि उनकी पहचान भी छीन लेता है। कार्यस्थल पर बाल श्रमिकों को उनके वास्तविक नाम की बजाय छोटू संबोधन से ही बुलाया और जाना जाता है। जिन हाथों में कलम कॉपी होनी चाहिए उन हाथों में चाय की ग्लास, जूठे टेबल को साफ करने वाले कपड़े, खुले आसमान के नीचे जिस सिर पर बंधन रहित बचपन होना चाहिए उस सिर पर ईंट अथवा सामान का बोझ उठाने वाला दृश्य, सभ्य समाज के लिए बदनुमा दाग सा है।

शारीरिक एवं मानसिक रूप से ऐसा कोई भी कार्य जो बालकों से उनका बचपन, उनकी क्षमता और आत्म-सम्मान का हनन करते हुए उन्हें स्कूली शिक्षा से वंचित करता है, बाल श्रम के अंतर्गत आता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार, बाल श्रम 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों द्वारा किया जाने वाला वह काम है जो किसी भी तरह से उनका शोषण करता है, उन्हें मानसिक, शारीरिक या सामाजिक नुकसान पहुँचाता है, या उन्हें जानलेवा खतरे में डालता है।

बाल मजदूरी (निषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986 के अनुसार, 14 वर्ष से कम आयु के किसी बच्चे को किसी कारखाने या खनन कार्य में लगाया जाना अथवा अन्य किसी जोखिम पूर्ण रोजगार में नियुक्त किया जाना, बाल श्रम के अंतर्गत आता है। भारतीय संविधान के भाग तीन अनुच्छेद 24 में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खतरनाक एवं खादानों में कार्यों में संलिप्त करना प्रतिबंधित किया गया है। अनुच्छेद 32 में भी बाल श्रम का प्रतिषेध और कार्यस्थल पर युवाओं का संरक्षण की चर्चा की गई है। बावजूद इसके कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्रों जैसे कालीन बुनाई, परिधान निर्माण, घरेलू सेवा, गन्ना खेतों, मत्स्य पालन, खनन, होटल, ढ़ाबा, ईंट भट्ठों, भवन निर्माण स्थलों पर बाल श्रमिकों की उपलब्धता सहर्ष ही देखी जा सकती है। गरीबी, अशिक्षा, जागरूकता का अभाव,पारिवारिक परिस्थिति जन्य परिवेश, अपर्याप्त सामाजिक सुरक्षा, सस्ते श्रम की माँग आदि स्थितियां बाल श्रमिक की संख्या में वृद्धि के प्रमुख कारक हैं। भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार 1.01 करोड़ बाल श्रमिक का आकलन किया गया था, जबकि वर्तमान में यह संख्या दो करोड़ के लगभग मानी जा रही है, वैसे सरकारी अनुमान के अनुसार लगभग 1 करोड़ 70 लाख भारतीय बच्चे बाल श्रमिक हैं, जो बेहद चिंताजनक है। यूपी, एमपी बिहार, राजस्थान महाराष्ट्र आदि राज्यों में बाल श्रम के मामले ज्यादा देखने को मिलते हैं। वैश्विक स्तर पर समय के साथ बाल श्रम में गिरावट देखने को मिली है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में कोविड-19 महामारी, युद्धों और संकटों के कारण उत्पन्न परिस्थितियों ने परिवारों को गरीबी की ओर तथा बचपन को बाल श्रम की ओर धकेलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

यद्यपि भारत में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन और यूनिसेफ के अलावा बाल श्रम उन्मूलन के लिए बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम (1986), राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (एनसीएलपी), राष्ट्रीय बाल श्रम उन्मूलन प्राधिकरण (1994),शिक्षा अधिकार अधिनियम(2009), भारत सरकार बाल श्रम (निषेध और विनियमन) संशोधन अधिनियम(2016), कैलाश सत्यार्थी चिल्ड्रेन्स फाउंडेशन, बाल रक्षा भारत, चाइल्डलाइन इंडिया फाउंडेशन आदि अधिनियम तथा सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठन वर्षों से संघर्षरत हैं, तथापि बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम का सख्ती से अनुपालन, शिक्षा का प्रचार-प्रसार, गरीब परिवारों को आर्थिक सहायता, बाल श्रम से पीड़ित बच्चों को पुनर्वास कार्यक्रमों के साथ ही मानवाधिकार संरक्षण एवं जन जागरूकता से बाल श्रम जैसी चुनौतियों से समय रहते निपटा जा सकता है।

आजकल

अब पूरे साल कारोबार का मिलेगा मौका

सड़कें और रेल पटरियां किसी भी देश की विकास रेखा मानी जाती हैं। यही आधारभूत ढांचे का सबसे मजबूत पक्ष होती हैं। इसलिए हर देश द्रुतगामी मार्गों और रेल पटरियों के विकास तथा विस्तार पर विशेष ध्यान देता है। जम्मू-कश्मीर की चिनाब नदी पर बने मेहराबदार पुल को इसी अर्थ में देखा जा सकता है। जम्मू-कश्मीर अभी तक देश के रेल संजाल से कटा हुआ था। इस पुल के चालू हो जाने के बाद वह भी देश की मुख्यधारा रेल यातायात से जुड़ गया है। यह दुनिया का सबसे ऊंचा पुल है, एफिल टावर से भी ऊंचा। इसे बनाना निस्संदेह बड़ी चुनौती थी।

जिस इलाके में इसे बनाया गया है, वह भूकम्प की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील है। यहां हर समय भूकम्प का खतरा बना रहता है। फिर, ऊंचाई अधिक होने के कारण इस पर पड़ने वाले वायुदाब और मौसम के प्रकोप से बचाव के उपाय करना भी कठिन था। मगर काबिल अभियंताओं ने इन तमाम चुनौतियों को स्वीकार किया और एक मिसाल के रूप में इसे खड़ा कर दिया। इसे बनाने में लंबा समय लग गया। इस दौरान कई तरह की अड़चनों का भी सामना करना पड़ा। मगर अब इसके बन कर तैयार हो जाने से अनेक कठिनाइयां दूर हो जाने की उम्मीद जगी है। हालांकि कश्मीर और लद्दाख सड़क मार्ग से अच्छी तरह जुड़े हैं। इन क्षेत्रों में नई सुरंगें बन जाने से सड़कों पर वाहनों की गति भी बढ़ गई है, मगर पहाड़ी क्षेत्रों में सड़कों के जरिए आवागमन उस तरह कभी आसान और सुविधाजनक नहीं रहता, जिस तरह रेल पटरियों से होता है। रेल मार्ग के जरिए न केवल मुसाफिरों की आवाजाही सुगम हो जाती है, बल्कि माल ढुलाई में बहुत आसानी होती है। रेल मार्गों का विकास औद्योगिक उन्नति के लिहाज से बहुत जरूरी माना जाता है। इस अर्थ में चिनाब पुल के खुल जाने से कश्मीर में औद्योगिक विकास और रोजी-रोजगार के नए अवसर पैदा होने की संभावनाएं खुल गई हैं। वहां के हस्तशिल्प और कृषि उत्पाद अब आसानी से देश के बाजारों तक पहुंच सकेंगे। जो कश्मीरी युवा और बहुत सारे स्थानीय लोग आमतौर पर पर्यटन पर निर्भर थे और वर्ष के कुछ महीनों में ही कारोबार कर पाते थे, उन्हें अब पूरे साल कारोबार का अवसर मिल सकेगा।

विश्वविद्यालयों में बदलाव की अर्थपूर्ण पहल

डॉ. सुधीर कुमार

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) की कुलपति द्वारा अपने पदनाम को 'कुलपति' से बदलकर 'कुलगुरु' करने का निर्णय शिक्षा जगत में एक विचारणीय पहल है। यह सिर्फ एक शब्द का बदलाव नहीं, बल्कि इसके पीछे भारतीय ज्ञान परंपरा, शैक्षणिक मूल्यों और गुरु-शिष्य परंपरा को पुन: स्थापित करने की सोच निहित है। इस कदम पर व्यापक चिंतन की आवश्यकता है।

'कुलपति' शब्द 'कुल' (परिवार या समुदाय) और 'पति' (स्वामी या मुखिया) से मिलकर बना है। यह प्रशासनिक अधिकार और स्वामित्व का बोध कराता है। इसमें सम्मान और अधिकार का भाव तो है, लेकिन शिक्षा और मार्गदर्शन का उतना नहीं। 'कुलगुरु' शब्द का मूल संस्कृत में है, और यह 'कुल' (परिवार/समूह) और 'गुरु' (शिक्षक/मार्गदर्शक) से मिलकर बना है। यह शब्द न केवल प्रशासनिक प्रमुखता को दर्शाता है, बल्कि इससे कहीं अधिक, यह ज्ञान, मार्गदर्शन, नैतिक नेतृत्व और छात्रों के प्रति पितृतुल्य स्नेह की भावना को भी समाहित करता है। 'कुलगुरु' वह होता है जो अपने कुल के सदस्यों को ज्ञान के मार्ग पर ले जाता है, उनके आध्यात्मिक और बौद्धिक विकास में सहायता करता है। एक विश्वविद्यालय केवल डिग्रियां बांटने वाली संस्था नहीं, बल्कि ज्ञान का मंदिर और छात्रों के व्यक्तित्व निर्माण का केंद्र होता है, और शिष्य-परंपरा के प्रति गहन प्रतिबद्धता को भी समाहित करता है।

स्पष्ट है कि 'गुरु' शब्द में जो सम्मान, त्याग, ज्ञान और परोपकार का भाव निहित है, वह 'पति' शब्द में नहीं। एक विश्वविद्यालय का प्रमुख केवल उसका प्रशासक नहीं होना चाहिए, बल्कि उसका 'गुरु' होना चाहिए, जो छात्रों, शिक्षकों और कर्मचारियों को ज्ञान, नैतिकता और समग्र विकास के मार्ग पर प्रेरित करे। नि:संदेह, विश्वविद्यालयों के प्रमुखों के लिए 'कुलगुरु' की उपाधि 'कुलपति' से कहीं अधिक उपयुक्त और श्रेष्ठ है। यह एक प्रतीकात्मक बदलाव हो सकता है, लेकिन इसका गहरा मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक प्रभाव पड़ेगा। यह विश्वविद्यालय के प्रमुख को केवल एक प्रबंधक नहीं, बल्कि एक मार्गदर्शक, एक संरक्षक और एक ज्ञानी व्यक्ति के रूप में स्थापित करेगा जो अपने 'कुल' के सभी सदस्यों के प्रति जिम्मेदार है। हां, यह बदलाव रातों-रात नहीं होगा और इसके लिए गहन विचार-विमर्श और सर्वसम्मति की आवश्यकता होगी।

देश के विश्वविद्यालय को इस बदलाव पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। यह केवल एक भाषाई बदलाव नहीं, बल्कि एक वैचारिक बदलाव है जो भारतीय शिक्षा प्रणाली को उसकी मूल भावना से जोड़ सकता है। अन्य विश्वविद्यालयों द्वारा 'कुलपति' के स्थान पर 'कुलगुरु' की उपाधि अपनाना एक सकारात्मक और दूरगामी कदम होगा। यह बदलाव विश्वविद्यालय के प्रमुख की भूमिका को केवल प्रशासनिक मुखिया से ऊपर उठाकर एक नैतिक और शैक्षणिक मार्गदर्शक के रूप में स्थापित करेगा, जिससे भारतीय गुरु-शिष्य परंपरा का पुनरुद्धार होगा। यह हमारी संस्कृति और मूल्यों के प्रति सम्मान का प्रतीक भी बनेगा।

हालांकि, यह भी समझना आवश्यक है कि केवल पदनाम बदलने से रातों-रात बदलाव नहीं आ जाएगा। 'कुलगुरु' की उपाधि को सार्थक बनाने के लिए कुलपति को वास्तव में गुरु की भूमिका निभानी होगी- छात्रों के साथ संवाद स्थापित करना, उनकी समस्याओं को समझना, उन्हें अकादमिक और व्यक्तिगत रूप से मार्गदर्शन करना, और विश्वविद्यालय के शैक्षणिक उत्थान के लिए प्रतिबद्ध रहना। यह बदलाव एक प्रतीकात्मक शुरुआत है, जिसका वास्तविक प्रभाव तब दिखेगा जब यह भावना विश्वविद्यालय के संपूर्ण कार्यप्रणाली में प्रतिबिंबित होगी।

भारतीय परंपरा में गुरु का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। गुरु केवल पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाता, बल्कि वह छात्रों को जीवन के मूल्यों, नैतिकता और सही-गलत का ज्ञान भी देता है। 'कुलगुरु' के रूप में, कुलपति की भूमिका केवल विश्वविद्यालय के प्रशासनिक कार्यों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह छात्रों और शिक्षकों के लिए एक प्रेरणास्रोत, एक संरक्षक और एक ज्ञानी मार्गदर्शक भी बन जाता है।

यह बदलाव एक ऐसे माहौल को बढ़ावा दे सकता है जहां छात्र अपने 'कुलगुरु' के प्रति अधिक सम्मान और विश्वास महसूस करें, जिससे एक स्वस्थ और सहयोगात्मक शैक्षणिक वातावरण का निर्माण होगा।